" कफ़न - प्रेमचंद "

झोंपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव-वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह-रह कर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई। सारा गाँव अंधकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा, "मालूम होता है बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते ही गया, जा, देख तो आ।"
माधव चिढ़ कर बोला, "मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नहीं जाती, देख कर क्या करूँ?"
"तू बड़ा बेदर्द है बे! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई!"
"तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।"

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना कामचोर था कि आध घंटे काम करता तो घंटे-भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी।

जब दो-चार फाके हो जाते, घीसू पेड़ पर चढ़कार लकडियाँ तोड़ लाता और माधव बाजार में बेच आता और जब तक वे पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। जब फाके की नौबत आ जाती, तो फिर लकडियाँ तोड़ते या मजदूरी तलाश करते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को लोग उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। विचित्र जीवन था इनका! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढँके हुए जिए जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त। कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज दे देते थे। मटर-आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते, या दस-पाँच ऊस उखाड़ लाते और रात को चूसते।

घीसू ने आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पदचिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी के खेत से खोद लाए थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आई थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर-भर आटे का इन्तजाम कर लेती थी और इन दोनों बेगैरतों का दोज़ख भरती रहती थी। जब से वह आई, ये दोनों और भी आलसी और आरामतलब हो गए थे, बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्व्याज भाव से दुगुनी मजदूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव-वेदना से मर रही थी और ये दोनों शायद इसी इन्तजार में थे कि वह मर जाय, तो आराम से सोएँ।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा, "जाकर देख तो क्या दशा है उसकी? चुड़ैल का फ़िसाद होगा, और क्या? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया माँगता है!"

माधव को भय था कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला, "मुझे वहाँ जाते डर लगता है।"
"डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही!"
"तो तुम्हीं जाकर देखो न?"
"मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं था। और मुझसे लजाएगी कि नहीं? जिसका कभी मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ! उसे तन की सुध भी तो न होगी। मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी।"
"मैं सोचता हूँ कोई बाल-बच्चा हो गया तो क्या होगा? सोंठ, गुड़, तोल, कुछ भी तो नहीं घर में!"

"सब-कुछ आ जाएगा। भगवान दें तो। जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे है, वे ही कल बुलाकर देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था, मगर भगवान ने किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।"

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत कुछ अच्छी नहीं न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था, जो किसानों के विचार शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाज़ों की कुत्सित मंडली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मंडली के और गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव अँगुली उठाता था। फिर भी उसे यह तकसीन तो थी कि अगर वह फ़टेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती। उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते।

दोनों आलू निकाल-निकालकर जलते-जलते खाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया। इतना सब्र न था कि उन्हें ठंडा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गईं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा तो बहुत ज्यादा गरम न मालूम होता, लेकिन दाँतों के तले पड़ते ही अन्दर का हिस्सा जबान, हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठंडा करने के लिए काफी सामान थे इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बरात याद आई, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी और आज भी उसकी याद ताजा थी। बोला, "वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भरपेट पूरियाँ खिलाई थीं, सबको! छोटे-बड़े सबने पूरियाँ खाईं और असली घी की! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, मिठाई। अब क्या बताऊँ कि इस भोज में क्या स्वाद मिला! कोई रोक-टोक नहीं थी। जो चीज माँगो और जितना चाहो खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गरम-गरम, गोल-गोल सुवासित कचौरियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पत्तल पर हाथ रोके हुए हैं, मगर वे हैं कि दिए जाते हैं और जब मुँह धो लिया, तो पान-इलायची भी मिली, मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी! खड़ा न हुआ जाता था। चटपट जाकर अपने कंबल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर!"

माधव ने इन पदार्थों का मन-ही-मन मज़ा लेते हुए कहा, "अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।"
"अब कोई क्या खिलाएगा? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है।
शादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो! पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोर कर कहाँ रखोगे! बटोरने में कमी नहीं हैं। हाँ, खर्च में किफायत सूझती है।"
"तुम़ने बीस-एक पूरियाँ खाई होंगी?"
"बीस से ज्यादा खाई थीं।"
"मैं पचास खा जाता।"
"पचास से कम मैंने भी न खाई होंगी। अच्छा पट्ठा था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।"

आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़ कर, पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर, गेंडुलियाँ मारे पड़े हों।
और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

सबेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा तो, उसकी स्त्री ठण्डी हो गई थी उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों जोर-जोर से हाय-हाय करने लगे और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना-धोना सुना तो दौड़े हुए आए और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न और लकड़ी की फिक्र करनी थी। पर घर में तो पैसा इस तरह गायब था कि जैसे चील के घोंसले में माँस।

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के जमींदार के पास गए। वह इन दोनों की सुरत से नफरत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों पीट चुके थे चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए।

पूछा, " क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है? अब तो तू कहीं दिखाई भी नहीं देता! मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।"
घीसू ने जमीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा, "सरकार! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गई। रात-भर तड़पती रही, सरकार! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब-कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा, मालिक! तबाह हो गए। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूँ। अब आपके सिवा कौन, उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ?"

जमींदार साहब दयालू थे। मगर घीसू पर दया करना काले कंबल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें चल, दूर हो यहाँ से! यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब गरज पड़ी, तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का, बदमाश! लेकिन यह क्रोध या दंड का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपए निकालर फेंक दिए। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकाला। उसकी तरफ ताका भी नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब जमींदार साहब ने दो रुपए दिए, तो गाँव के बनिये-महाजनों को इन्कार का साहस कैसे होता? घीसू जमींदार के नाम

का ढिंढोरा भी पीटना खूब जानता था। किसी ने दो आने दिए, किसी ने चार आने। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपए की अच्छी रकम जमा हो गई। कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाजार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस काटने लगे।

गाँव की नरम-दिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश को देखती थीं और उसकी बेकसी पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थीं।
"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते-जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर कफन चाहिए।"
"कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है!"
"और क्या रखा रहता है? यहीं पाँच रुपए पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते।"

दोनों एक-दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दूकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर। तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे और जैसे किसी पूर्व-निश्चित योजन से अन्दर चले गए। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जा कर कहा, "साहू जी, एक बोतल हमें भी देना।"

इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आई और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गए।
घीसू बोला, "कफ़न लगाने से क्या मिलता है? आखिर जल ही तो जाता, कुछ बहू के साथ तो न जाता।"

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो, "दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बामनों को हजारों रुपए क्यों दे देते हैं! कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं!"

"बड़े आदमियों के पास धन है, चाहे फूँके। हमारे पास फूँकने को क्या है?"

"लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं, कफन कहाँ है?"

घीसू हँसा, "अबे कह देंगे कि रुपए क़मर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आएगा, लेकिन फिर वही रुपए देंगे।"

माधव भी हँसा, इस अनपेक्षित सौभाग्य पर बोला, "बड़ी अच्छी थी बेचारी! मरी तो भी खूब खिला-पिलाकर!"

अभी बोतल से ज्यादा उड़ गई। घीसू ने दो सेर पूरियाँ मँगाई। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दुकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारा सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया और खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े-से पैसे बच रहे।

दोनों इस वक्त शान से बैठे हुए पूरियाँ खा रहे थे, जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ़ था, न बदनामी की फिक्र। इन भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला, "हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है, तो क्या उसे पुन्न न होगा?"
माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक की, "जरूर से जरूर होगा। भगवान तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुंठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला, वह कभी उम्र भर न मिला था।"

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। भोला, "क्यों दादा, हम लोग भी तो एक-न-दिन वहाँ जाएँगे ही।" घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

"जो वहाँ वह हम लोगों से पूछे कि तुमने कफ़न क्यों नहीं दिया तो क्या कहेंगे?"
"कहेंगे तुम्हारा सिर!"
"पूछेगी तो जरूर!"
"तू जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा? तू मुझे ऐसा गधा समझता है? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ! उसको कफ़न मिलेगा और इससे बहुत अच्छा मिलेगा।"

माधव को विश्वास न आया। बोला, "कौन देगा? रुपए तो तुमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में सिंदुर तो मैंने ही डाला था।"

घीसू गरम होकर बोला, "मैं कहता हूँ, उसे कफ़न मिलेगा! तू मानता क्यों नहीं?"
"कौन देगा, बताते क्यों नहीं?"
"वही लोग देंगे, जिन्होंने इस बार दिया। हाँ, अबकी रुपए हमारे हाथ न आएँगे।"

ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह से कुल्हड़ लगाए देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते। शराब से ज्यादा वहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ खींच लती थीं, और कुछ देर के लिए वे भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं! या, न जीते हैं न मरते हैं।

और ये दोनों बाप-बेटा अब भी मजे ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं। पूरी बोतल बीच में हैं।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूरियों का पत्तल उठाकर एक भिखरी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और 'देने' के गौरव, आनन्द और उल्लास का उसने अपने जीवन में पहले बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा, "ले, जा खूब खा और आशीर्वाद दे! जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। पर तेरा आशिर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दे, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं!"

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा, "वह वैकुण्ठ में जायेगी दादा, वह वैकुण्ठ की रानी बनेगी।"

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला, "हाँ, बेटा वैकुण्ठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी को सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न वैकुण्ठ में जायेगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं!"

श्रद्धालुता का यह रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दु:ख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला, "मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दु:ख भोगा। कितना दु:ख झेलकर मरी!"
वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा, चींखें मार-मारकर।
घीसू ने समझाया, "क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई। जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिए।"

और दोनों खड़े होकर गाने लगे,
"ठगिनी क्यों नैना झमकावै? ठगिनी!"

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और ये दोनों अपने दिल में मस्त गाते जाते थे।

फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बनाये, अभिनय भी किए और आखिर नशे से बदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

" कफ़न - प्रेमचंद "

पंच परमेश्वर

प्रेमचन्द

चित्रांकन
अतनु रॉय

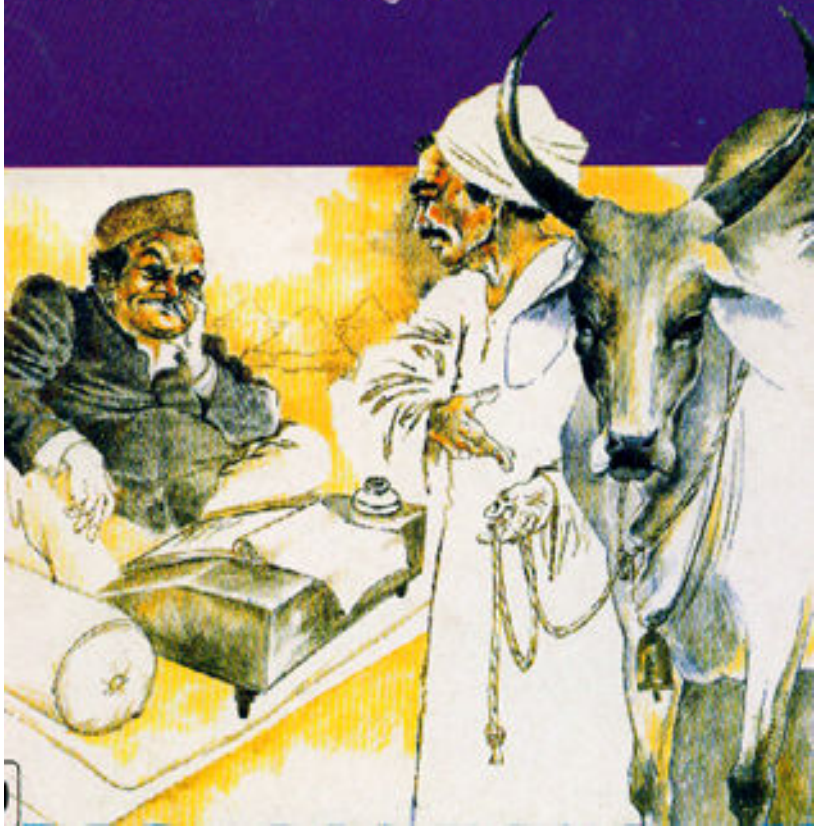

प्रेमचंद

हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचंद का असली नाम धनपत राय था। इनका जन्म वाराणसी के निकट लम्ही में हुआ था। प्रेमचंद ने कुछ दिनों तक शिक्षा-विभाग में पहले अध्यापक, और फिर सब-डिप्टी इन्सपेक्टर की नौकरी की। परंतु 1920 के बाद उन्होंने अपना पूरा समय हिन्दी पत्रिकाओं के सम्पादन और कहानी/लेख लिखने में बिताया।

अपने काल में हो रहे सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन ही उनकी कहानियों का आधार बने। जहाँ एक तरफ़ उनकी कहानियों में गाँव के लोगों का रहन-सहन, उनकी परेशानियाँ और उनके छोटे बड़े सुख और दुख की झलक मिलती है वहीं दूसरी तरफ़ ज़िंदगी की जटिलता से जूझते हुए नगर-वासियों का सही चित्रांकन मिलता है।

मानव-सम्बन्धों पर आधारित यह कहानी, पंच-परमेश्वर, प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानियों में से एक है।

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी बचपन से दोस्त थे। दोनों को एक-दूसरे पर पूरा भरोसा था।

वे साथ खाते-पीते नहीं थे। धर्म भी अलग थे। केवल विचार मिलते थे। यही उनकी मित्रता का आधार था।

जुम्मन की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उनके पास थोड़ी-सी ज़मीन-जायदाद थी। जुम्मन ने उन्हें फुसलाकर जायदाद अपने नाम लिखवा ली।

जब तक दान-पत्र की रजिस्ट्री नहीं हुई थी, खाला का खूब आदर होता था। रजिस्ट्री होते ही सब कुछ बदल गया। अब खाला को सूखी रोटी और कड़वे बोल ही सुनने को मिलते थे।

कुछ दिन तक खालाजान ने सुना और सहा। जब और न सह सकीं तो जुम्मन से बोलीं, 'बेटा! मुझे हर महीने कुछ रुपये दे दिया कर। मैं अलग खा-पका लूँगी।'

जुम्मन ने रुपये देने से मना कर दिया। इस पर खाला बिगड़ गईं। उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। पढ़ा-लिखा होने के कारण जुम्मन का बहुत मान था। वह जानते थे कि जीत उन्हीं की होगी। हंस कर बोले, 'ज़रूर करो।'

कई दिनों तक बूढ़ी खाला, हाथ में लकड़ी लिए घर-घर घूमीं। सब लोगों से पंचायत में आने के लिए कहा। किसी ने हाँ-हूँ करके टाल दिया तो किसी ने उल्टे उन्हें ही गालियाँ दीं।

चारों ओर से घूमघाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आईं। अलगू से भी पंचायत में आने के लिए कहा।

अलगू बोला, 'आ तो जाऊँगा पर मुँह न खोलूँगा। जुम्मन से मेरी पुरानी दोस्ती है। उससे बिगाड़ नहीं कर सकता।' इस पर खाला बोलीं, 'बेटा ! क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे।' खाला चली गईं पर अलगू बहुत देर तक यही बात सोचता रहा।

शाम के समय पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। खाला ने पंचों को अपना दुख सुनाया और न्याय माँगा। वे पंच का फैसला मानने को तैयार थीं।

फिर सरपंच बनाने की बारी आई। पूछने पर जुम्मन बोले, 'खाला जिसे चाहें उसे बनायें। मैं भी पंच का फैसला मानने को तैयार हूँ।' तब खाला ने अलगू को सरपंच बनाया।

जुम्मन खुश हो गए। अब तो जीत उनकी ही होनी थी। पर अलगू कतराने लगे। तब खाला बोलीं, 'बेटा! दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न दुश्मन। पंच के दिल में खुदा बसता है। उनके मुहँ से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ़ से निकलती है।'

अलगू चौधरी सरपंच हुए। खाला और जुम्मन, अब उनके लिए, एक समान थे।

अब जुम्मन ने अपनी बात पंचों से कही, 'खाला की जायदाद से मुझे ज्यादा फ़ायदा नहीं होता। इसलिए मैं उन्हें हर महीने खर्च नहीं दे सकता। फिर इस तरह की कोई लिखा-पढ़ी भी तो नहीं हुई थी।'

इस बात पर अलगू, जुम्मन से सवाल-जवाब करने लगे। जुम्मन हैरान थे।

फिर अलगू ने फ़ैसला सुनाया, 'खाला को खर्च देने लायक लाभ तो जायदाद से हो ही जाता है। अगर जुम्मन खर्च नहीं देंगे तो दान-पत्र की रजिस्ट्री, रद्द कर दी जायेगी।'

फ़ैसला सुनकर जुम्मन दंग रह गए। 'क्या यही कलियुग की दोस्ती है। जिस पर भरोसा था उसी ने समय पड़ने पर धोखा दिया !'

सब लोग अलगू की सच्चाई की तारीफ़ करने लगे। 'इसी का नाम पंचायत है। दूध का दूध, पानी का पानी कर दिया।'

इस फ़ैसले ने अलगू और जुम्मन को दुश्मन बना दिया। सच के एक झोंके ने दोस्ती की जड़ हिला दी।

जुम्मन हर समय बदला लेने की सोचने लगे। शीघ्र ही उन्हें, यह अवसर मिला।

पिछले साल अलगू मेले से बड़े-बड़े सींगोंवाले एक जोड़ी बैल खरीद लाया था। पंचायत के एक महीने बाद ही एक बैल मर गया। अब एक बैल से क्या होता ? सो अलगू ने उसे गाँव के बनिए समझू साहू को बेच दिया। साहू ने डेढ़ सौ रुपये में बैल खरीद लिया। एक महीने बाद दाम चुकाने की बात हुई।

समझू साहू गावँ से गुड़-घी लादकर मंडी ले जाते थे। फिर मंडी से तेल नमक लाकर गाँव में बेचते थे। नया बैल पाया तो दिन में तीन-चार चक्कर लगाने लगे। पशु के साथ पशु का सा बर्ताव किया। न ठीक से चारा दिया, न पानी ही। आखिर एक दिन, कोड़े की मार खाते-खाते बैल जो गिरा, फिर कभी न उठा।

कई महीने बाद अलगू बैल के दाम माँगने गये। समझू साहू और उनकी पत्नी ने उन्हें बहुत डाँटा। 'मरा-सा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं। यहाँ तो जन्म-भर की कमाई लुट गई।'

अलगू डेढ़-सौ रुपये गँवाना न चहाते थे। लोगों ने उन्हें पंचायत करने को कहा। वे मान गए।

पंचायत की तैयारियाँ हुईं। तीसरे दिन शाम को उसी पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। समझू साहू ने जुम्मन शेख को सरपंच बनाया। अलगू निराश हो गए। पर कुछ बोले नहीं।

सरपंच बनते ही जुम्मन में ज़िम्मेदारी आ गई। वे न्याय और धर्म के आसन पर बैठे थे। यह समय निजी बदला लेने का नहीं था। उन्हें केवल सच ही बोलना चाहिए।

पंचों ने समझू साहू और अलगू चौधरी से सवाल-जवाब किया। अंत में जुम्मन ने फ़ैसला सुनाया, 'जब बैल खरीदा गया था तब वह बीमार नहीं था। समझू साहू की लापरवाही और अत्याचार के कारण की वह मारा गया। समझू साहू अलगू चौधरी को बैल के पूरे दाम दें। अलगू चाहें तो दाम कुछ कम कर सकते हैं।'

अलगू खुशी से झूम गये। उठ खड़े हुए और ज़ोर से बोले, 'पंच-परमेश्वर की जय।'

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आए। गले लिपटकर बोले, 'आज पता चला है कि पंच न किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। पंच में तो परमेश्वर वास करते हैं।'

अलगू रोने लगे। दिल का मैल धुल चला था। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।

पूस की रात

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा सहना आया है । लाओं, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे ।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली तीन ही रुपये हैं, दे दोगे तो कम्मल कहाँ से आवेगा? माघ पूस की रात हार में कैसे कटेगी ? उससे कह दो, फसल पर दे देंगें। अभी नहीं ।

हल्कू एक क्षण अनिशिचत दशा में खड़ा रहा । पूस सिर पर आ गया, कम्बल के बिना हार मे रात को वह किसी तरह सो नहीं सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुडकियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों मे मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी । यह सोचता हुआ वह अपना भारी भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिध्द करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला दे दे, गला तो छूटे ।कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचँगा ।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और ऑखें तरेरती हुई बोली कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ तो कौन सा उपाय करोगे ? कोई खैरात दे देगा कम्मल ? न जान कितनी बाकी है, जों किसी तरह चुकने ही नहीं आती । मैं कहती हूं, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते ? मर मर काम करों, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुटटी हुई । बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ हैं । पेट के लिए मजूरी करों । ऐसी खेती से बाज आयें । मैं रुपयें न दूँगी, न दूँगी ।

हल्कू उदास होकर बोला तो क्या गाली खाऊँ ?

मुन्नी ने तड़पकर कहा गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है ?

मगर यह कहने के साथ् ही उसकी तनी हुई भौहें ढ़ीली पड़ गई । हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भाँति उसे घूर रहा था ।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली तुम छोड़ दो अबकी से खेती । मजूरी में सुख से एक रोटी तो

खाने को मिलेगी । किसी की धौंस तो न रहेगी । अच्छी खेती है ! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर धौंस ।

हल्कू न रुपयें लिये और इस तरह बाहर चला, मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हों । उसने मजूरी से एक-एक-पैसा काट काटकर तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किए थें । वह आज निकले जा रहे थे । एक एक पग के साथ उसका मस्तक पानी दीनता के भार से दबा जा रहा था ।

2

पूस की अँधेरी रात ! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पतों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटाले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था । खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट मे मुँह डाले सर्दी से कूँ कूँ कर रहा था । दो मे से एक को भी नींद नहीं आ रही थी ।

हल्कू ने घुटनियों कों गरदन में चिपकाते हुए कहा क्यों जबरा, जाड़ा लगता है ? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आये थें ? अब खाओं ठंड, मै क्या करूँ ? जानते थें, मै। यहाँ हलुआ पूरी खाने आ रहा हूँ, दोड़े दौड़े आगे आगे चले आये । अब रोओ नानी के नाम को ।

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलायी और अपनी कूँ कूँ को दीर्घ बनाता हुआ कहा कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे । यीह रांड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिए आ रही हैं । उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ । किसी तरह रात तो कटे ! आठ चिलम तो पी चुका । यह खेती का मजा हैं ! और एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा आए तो गरमी से घबड़ाकर भागे। मोटे मोटे गददे, लिहाफ, कम्बल । मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाए । जकदीर की खूबी ! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें !

हल्कू उठा, गड्ढे मे से जरा सी आग निकालकर चिलम भरी । जबरा भी उठ बैठा ।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा-पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता हैं, हाँ जरा, मन बदल जाता है।

जबरा ने उनके मुँह की ओर प्रेम से छलकता हुई ऑखों से देखा ।

हल्कू आज और जाड़ा खा ले । कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा । उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा ।

जबरा ने अपने पंजो उसकी घुटनियों पर रख दिए और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया । हल्कू को उसकी गर्म सॉस लगी ।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा । कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था ।

जब किसी तर न रहा गया, उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसक सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया । कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद मे चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था । जबरा शायद यह समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न ,थी । अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता । वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा कोपहुंचा दिया । नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उनका एक एक अणु प्रकाश से चमक रहा था ।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई । इस विशेष आत्मीयता ने उसमे एक नई स्फूर्ति पैदा कर रही थी, जो हवा के ठंडें झोकों को तुच्छ समझती थी । वह झपटकर उठा और छपरी से बाहर आकर भूँकने लगा । हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया । हार मे चारों तरफ दौड़ दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरंत ही फिर दौड़ता । कर्त्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति ही उछल रहा था ।

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरु किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई, ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया हैं, धमनियों मे रक्त की जगह हिम बह रहीं है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है ! सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े । ऊपर आ जाएँगे तब कहीं सबेरा होगा । अभी पहर से ऊपर रात हैं ।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था । पतझड़ शुरु हो गई थी । बाग में पत्तियो को ढेर लगा हुआ था । हल्कू ने सोच, चलकर पत्तियों बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ । रात को कोई मुझें पत्तियों बटारते देख तो समझे, कोई भूत है । कौन जाने, कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठे नहीं रह जाता ।

उसने पास के अरहर के खेत मे जाकर कई पौधें उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिये बगीचे की तरफ चला । जबरा ने उसे आते देखा, पास आया और दुम हिलाने लगा ।

हल्कू ने कहा अब तो नहीं रहा जाता जबरू । चलो बगीचे में पत्तियों बटोरकर तापें । टाँटे हो जाएँगे, तो फिर आकर सोएँगें । अभी तो बहुत रात है।

जबरा ने कूँ कूँ करें सहमति प्रकट की और आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अँधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था । वृक्षों से ओस की बूँदे टप टप नीचे टपक रही थीं ।

एकाएक एक झोंका मेहँदी के फूलों की खूशबू लिए हुए आया ।

हल्कू ने कहा कैसी अच्छी महक आई जबरू ! तुम्हारी नाक में भी तो सुगंध आ रही हैं ?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हडडी पड़ी मिल गई थी । उसे चिंचोड़ रहा था ।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियों बठारने लगा । जरा देर में पत्तियों का ढेर लग गया था । हाथ ठिठुरे जाते थें । नगें पांव गले जाते थें । और

वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था । इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा ।

थोड़ी देर में अलावा जल उठा । उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी । उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थें, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हों । अन्धकार के उस अनंत सागर मे यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था ।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था । एक क्षण में उसने दोहर उताकर बगल में दबा ली, दोनों पॉवं फैला दिए, मानों ठंड को ललकार रहा हो, तेरे जी में आए सो कर । ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय गर्व को हृदय में छिपा न सकता था ।

उसने जबरा से कहा क्यों जब्बर, अब ठंड नहीं लग रही है ?

जब्बर ने कूँ कूँ करके मानो कहा अब क्या ठंड लगती ही रहेगी ?

'पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खातें ।'

जब्बर ने पूँछ हिलायी ।

अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें । देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बचा, तो मैं दवा न करूँगा ।

जब्बर ने उस अग्नि राशि की ओर कातर नेत्रों से देखा !

मुन्नी से कल न कह देना, नहीं लड़ाई करेगी ।

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया । पैरों में जरा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी । जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ ।

हल्कू ने कहा चलो चलों इसकी सही नहीं ! ऊपर से कूदकर आओ । वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया ।

पत्तियाँ जल चुकी थीं । बगीचे में फिर अँधेरा छा गया था । राख के नीचे कुछ कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी, पर एक क्षण में फिर ऑखे बन्द कर लेती थी !

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा । उसके बदन में गर्मी आ गई थी, पर ज्यों ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था ।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा । हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुण्ड खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुण्ड था । उनके कूदने दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थी । फिर ऐसा मालूम हुआ कि खेत में चर रहीं है। उनके चबाने की आवाज चर चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ!

उसने जोर से आवाज लगायी जबरा, जबरा।

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दँदाया हुआ बैठा था। इस जाड़े पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असह्य जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगायी हिलो! हिलो! हिलो!

जबरा फिर भूँक उठा । जानवर खेत चर रहे थें । फसल तैयार हैं । कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते है।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो तीन कदम चला, पर एकाएक हवा कस ऐसा ठंडा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक का सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा ।

जबरा अपना गला फाड़ डालता था, नील गाये खेत का सफाया किए डालती थीं और हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था । अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पस गर्म जमीन परद वही चादर ओढ़ कर सो गया ।

सबेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैली गई थी और मुन्नी की रही थी क्या आज सोते ही रहोगें ? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया ।

हल्कू न उठकर कहा क्या तू खेत से होकर आ रही है ?

मुन्नी बोली हाँ, सारे खेत कासत्यनाश हो गया । भला, ऐसा भी कोई सोता है। तुम्हारे यहाँ मँड़ैया डालने से क्या हुआ ?

हल्कू ने बहाना किया मैं मरते मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी हैं। पेट में ऐसा दरद हुआ, ऐसा दरद हुआ कि मै नहीं जानता हूँ !

दोनों फिर खेत के डाँड पर आयें । देखा सारा खेत रौदां पड़ा हुआ है और जबरा मँड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हों ।

दोनों खेत की दशा देख रहे थें । मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी, पर हल्कू प्रसन्न था ।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।
हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा रात को ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।